जैनधर्म का भारतीय संस्कृति में योगदान

बालचन्द कोठारी

जैन धर्म अपने विचार और जीवन संबंधी व्यवस्थाओं के विकास में कभी किसी संकुचित दृष्टि का शिकार नहीं बना, उसकी भूमिका राष्ट्रीय दृष्टि से सदैव उदार और उदात्त रही ।

समस्त भारत देश आज की राजनैतिक दृष्टिमात्र से ही नहीं किन्तु अपनी प्राचीनतम धार्मिक परम्परानुसार भी जैनियों के लिये एक इकाई और श्रद्धा भक्ति का भाजन बना है।

जैन तीर्थंकर भगवान महावीर ने लोकोपकार की भावना से उस समय की सुबोध वाणी अर्धमागधी का उपयोग किया तथा उनके गणधरों ने भी उसी भाषा में उनके उपदेशों को संकलन किया । जैन आचार्य जहाँ-जहाँ गये वहां-वहां उन्होंने उन्हीं प्रदेशों में प्रचलित लोक भाषा को अपनी साहित्य रचना का माध्यम बनाया। हिन्दी गुजराती आदि आधुनिक भाषाओं का प्राचीनतम साहित्य जैनियों का ही मिलता है। दक्षिण में तामिल और कन्नड भाषाओं को प्राचीन काल में साहित्य में उतारने का श्रेय जैनियों को ही दिया जा सकता है। जैनियों ने कभी भी किसी एक प्रान्तीय भाषा का पक्षपात नहीं किया सदैव देश भर की भाषाओं को समान आदर-भाव से अपनाया है और इस बात के लिये उनका विशाल साहित्य साक्षी है।

राम और लक्ष्मण तथा कृष्ण और बलदेव के प्रति जनता का पूज्यभाव रहा है और उन्हें अवतार पुरुष माना गया है । जैनियों ने तीर्थंकरों के साथ-साथ इन्हें भी त्रेसठ शलाका पुरुषों में आदरणीय स्थान देकर अपने पुराणों में विस्तार से उनके जीवन चरित्र का वर्णन किया है। जैन पुराणों में उच्चता और सम्मान का स्थान देकर रावण व जरासंघ जैसे अनार्य राजाओं की भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचने दी । रावण को दशमुखी राक्षस न मानकर उसे विद्याधरवंशी माना है जिसके स्वाभाविक एक मुख के अतिरिक्त गले में हार की नौ मणियों में मुख का प्रतिबिम्ब पड़ने से लोग उसे दशानन भी कहते थे। जैन पुराणों में हनुमान, सुग्रीव आदि को बंदर नहीं किन्तु विद्याधरवंशी राजा माना गया है जिनका ध्वजचिह्न बानर था । जैन दर्शन जीव और अजीव रूप से दोनों तत्वों को स्वीकार करता है, उसमें छह द्रव्यों को माना है। द्रव्य वह है जिसमें सत्तागुण है और सत्ता त्रिगुणात्मक है । उत्पादन, व्यय, और ध्रौव्य तीन गुण हैं।

संसार में चैतन्य गुणयुक्त आत्मतत्व भी है और चैतन्यहीन मूर्तिमान भौतिक पदार्थ तथा अमूर्तिक काल आकाशादि तत्व भी । ये सभी द्रव्य गुण पर्यायात्मक हैं। अपनी गुणात्मक अवस्था के कारण उनमें ध्रुवता है तथा पर्यायात्मक के कारण उनमें उत्पत्ति विनाशरूप अवस्थाएं भी विद्यमान हैं।

जैन धर्म के इस दार्शनिक तत्वज्ञान में ही उसकी व्यापक दृष्टि पाई जाती है और इसी व्यापक दृष्टि से वस्तु विचार के लिए जैन धर्म ने अपना स्याद्वाद अनेकांत रूप न्याय स्थापित किया है । इसी उद्देश्य से जैन आचार्यों ने देश काल, तथा द्रव्य और भाव के अनुसार भी वस्तु वैचित्र्य का विचार करने पर जोर दिया है ।

जबकि हमारा देश वैयक्तिक व्यवहार में ही नहीं किन्तु राष्ट्रीय अन्तर-राष्ट्रीय नीति के निर्धारण में भी अहिंसा तत्व को मौलिक रूप से स्वीकार कर चुका है । तब जैन धर्म का अहिंसा सिद्धांत अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण सिद्ध होता है और उसके सूक्ष्म अध्ययन और विचार की आवश्यकता प्रतीत होती है ।

इसी समन्वयात्मक अनेकांत सिद्धांत के आधार पर आज से लगभग डेढ़ हजार वर्ष पूर्व हुवे समन्तभद्राचार्य ने अपने युत्यनु-शासन नामक ग्रन्थ में महावीर के जैन शासन को सब आपदाओं का निवारक शाश्वत सर्वोदय तीर्थ कहा है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्वापदाम् अंतकरम् निरंतम् सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ।।
(युक्तयनुशासन श्लोक ६१)

जिन आंतरिक गुणों के बल पर जैन धर्म गत तीन चार हजार वर्षों से इस देश के जन जीवन में व्याप्त है वह है जैन धर्म की आध्यात्मिक भूमिका, नैतिक विन्यास एवं व्यावहारिक उपयोगिता और संतुलन। यहाँ प्रकृति के जड़ और चेतन तत्वों की सत्ता को स्वीकार कर चेतन को जड़ से ऊपर उठाने और परमात्मपद प्राप्त कराने की कला का प्रतिपादन किया गया है ।

विश्व के अनादि अनन्त प्रवाह में जड़ चेतन रूप द्रव्यों के नाना रूपों और गुणों के विकास के लिये किसी एक ईश्वर की इच्छा व अधीनता को स्वीकार नहीं किया गया । जिन अजीव तत्वों के परिणामी नित्यत्व गुण के द्वारा ही समस्त विकार और विकास के मर्म को समझने और समझाने का प्रयत्न किया गया है ।

सत्ता स्वयं उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यात्मक है और ऐसी सत्ता रखने वाले समस्त द्रव्य गुणपर्याय युक्त हैं । इन्हीं मौलिक सिद्धांतों में जैन दर्शन समस्त पदार्थों के नित्यानित्यस्वरूप अन्तर्निहित है।

इस जानकारी के अभाव में प्राणी भ्रान्त, भटकते और बंधन में पड़े रहते हैं । इस तथ्य की ओर सच्ची दृष्टि और उसका सच्चा ज्ञान एवं तदनुसार आचरण हो जाने पर कोई पूर्ण स्वातन्त्र्य व बंधन मुक्ति रूप मोक्ष का अधिकारी हो सकता है ।

यही जैन दर्शनानुसार जीवन का सर्वोच्च ध्येय और लक्ष्य है। व्यावहारिक दृष्टि से विरोध में सामंजस्य, कलह में शांति व जीवन के प्रति आत्मीयता का भाव उत्पन्न होना ही दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। जिसकी आनुषंगिक साधनाएं हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहरूप नियम तथा क्षमा, मृदुता आदि गुण ।

नाना प्रकार के व्रतों और उपवासों, भावनाओं और तपस्याओं, ध्यानों और योगों का उद्देश्य यही विश्वजनीन आत्मवृत्ति प्राप्त करना है। समत्व का बोध और अभ्यास करना ही अनेकांत व स्याद्वाद जैसे सिद्धांतों का साध्य है ।

जीवन में इस वृत्ति को स्थापित करने के लिये तीर्थंकरों और आचार्यों ने जो उपदेश दिया वह सहस्रों जैन ग्रंथों में ग्रंथित है। ये ग्रंथ नाना प्रदेशों और भिन्न-भिन्न युगों की विविध भाषाओं में लिखे गये ।

अर्ध-मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री और अपभ्रंश प्राकृतों एवं संस्कृत में जैन धर्म का विपुल साहित्य उपलब्ध है – जो अपने भाषा, विषय शैली, व सजावट के गुणों द्वारा अपनी विशेषता रखता है । आधुनिक लोक भाषाओं व उनकी साहित्यिक विधाओं के विकास और समझने के लिये यह साहित्य अद्वितीय, महत्वपूर्ण है ।

साहित्य के अतिरिक्त गुफाओं, स्तूपों, मंदिरों और मूर्तियों तथा चित्रों आदि ललितकला की निर्मितियों द्वारा भी धर्म ने न केवल लोक का आध्यात्मिक व नैतिक स्तर उठाने का प्रयत्न किया है किन्तु समस्त देश के भिन्न भागों के सौन्दर्य से सजाया है । इनके दर्शन से हृदय विशुद्ध और आनन्द विभोर हो जाता है ।

श्रवणबेलगोला, कारकल, मूडबिद्री वगैरह गांव में जो जैन मंदिरों में भव्य मूर्तियां विराजमान की हैं, राजस्थान में आबू पहाड़ पर दिलवारा जैन मंदिर बनवाये हैं और राणकपुर में जो भव्य मंदिर बने हैं । वे किसी भी देश के लिये बड़े आदर स्थान हैं । मंदिर, मूर्तियाँ और चित्रों द्वारा जो पौराणिक दृश्य बतलाया गया है और हस्तलिखित प्रतियों का जो संग्रह जैनियों ने किया है,इन तमाम कृतियों से जैन धर्म ने स्थापत्य शास्त्र से गौरव प्राप्त किया था और उनसे भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का बहुत बड़ा योगदान हुआ है, इसका पता चलता है ।

राष्ट्रकूट राजाओं के शासन काल में श्री वीरसेन, श्री जिनसेन और श्री गुणभद्र आदि आचार्यों ने जो सामुदायिक साहित्य निर्माण किया है वह उच्च प्रकार का साहित्य है। श्री वीरसेनाचार्य और श्री जिनसेनाचार्य ने जो साहित्य निर्माण किया है उससे पाया जाता है कि उन्होंने साहित्य की निर्मिति में खुद को समर्पित किया था। वे संयमी थे, सिर्फ एक वक्त ही अल्पाहार करते थे । इन आचार्यों के अतिरिक्त पंडित आशाधरजी, पंडित पुष्पदंत वगैरह महाविद्वान एवं गृहस्थाश्रमी थे तो भी दक्षिण और उत्तर भारत में प्राकृत और संस्कृत भाषा में अति महत्व का साहित्य निर्माण किया है।

श्री जिनसेनाचार्य ने पार्श्वाभ्युदय ग्रन्थ लिखा है, और कालिदास जैसे विख्यात कवि ने मेघदूत लिखा था उसके समान श्री पार्श्वाभ्युदय यह काव्य है। पार्श्वाभ्युदय में तेवीसवें तीर्थंकर का जीवन चरित्र और उनके वैरी का, श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर से शत्रुत्व का वर्णन किया है । यह पार्श्वाभ्युदय काव्य कालिदास के मेघदूत काव्य के श्लोकों का आधार लेकर खण्ड काव्य की रचना है । यह असामान्य विद्वत्ता का लक्षण है ।

श्री जिनसेनाचार्य के गुरु वीरसेन ने जयधवल ग्रन्थ पर टीका लिखना शुरू किया था, वह उनके जीवन काल में पूर्ण नहीं हो सकी। इस टीका को श्री जिनसेनाचार्य ने पूर्ण किया और उन्होंने महापुराण भी लिखा है पंप, पोन्न, और रण्ण ये तीनों महाकवि कन्नड साहित्य में रत्नत्रय कहलाते हैं। ये तीनों कन्नड़ कवि संस्कृत भाषा में भी अतिनिपुण थे। इन कवियों ने उच्च दर्जे का कन्नड़ साहित्य निर्माण किया है। श्री जिनसेनाचार्य ने महापुराण में जैन लोगों के सामाजिक जीवन का वर्णन किया है और संस्कृत भाषा में जो आदर्श ग्रन्थ हैं उसी नमूने पर यह महापुराण कन्नड़ भाषा में लिखा है ।

श्री समन्तभद्राचार्य, श्री सिद्धसेनाचार्य और श्री विद्यानंदी आचार्य ये सुप्रसिद्ध तार्किक और न्यायशास्त्र निपुण थे, उन्होंके लिखे हुवे न्यायशास्त्र में उनके काल में जो कुछ मत प्रणालियां थीं उनका दिग्दर्शन किया है। इन आचार्यों ने दक्षिण भारत में कन्नड़ साहित्य निर्माण किया है वह अतिमहत्व का है ।

जैन ग्रन्थों में अहिंसा सिद्धांत का निरूपण अत्यन्त समर्पक तरीके से किया गया है। अहिंसा धर्म का पालन गृहस्थाश्रमी अर्थात् संसारी जीवों को पालने के संबंध में मर्यादा बतलाई गई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। मुनि और त्यागियों के लिये अहिंसा धर्म महाव्रत के तौर पर पालन करना चाहिये। हिंसा के स्थूल रूप से चार प्रकार बतलाये गये हैं।

आरम्भी, उद्यमी, विरोधी और संकल्पी ऐसी चार तरह की हिंसा होती है। गृहस्थाश्रमी को सिर्फ संकल्पी हिंसा का त्याग बतलाया गया है। पंचसूता और कृषि वाणिज्यादि रूप आरंभ कार्यों में तो किसी व्यक्ति विशेष के प्राणघात का कोई संकल्प ही नहीं होता, विरोधी हिंसा अपने प्राण, धन, जनप्रतिष्ठा तथा शीलादि की रक्षा के लिये जो करनी पड़े वह भी गृहस्थाश्रमी को अनिवार्य है। उद्यमी हिंसा खेती, व्यापार, कारखाना और कला-कौशलादि धंधा करने में जो हिंसा संकल्प न रहते हुए होती है वह स्वेच्छा से न होने के कारण गृहस्थाश्रमी को अनिवार्य है।

दक्षिण भारत का इतिहास देखने से पाया जाता है कि धार्मिक श्रावकों ने भी देशरक्षा व धर्म संरक्षण के लिये युद्ध किये थे। इसी तरह गुजरात और राजस्थान में भी जैनियों ने युद्ध किया था इसका इतिहास मिलता है। प्राणिमात्र के लिये दयाभाव रखना, अहिंसा पालन करना यह परम तत्व है। हमारा चरित्र ध्येय के अनुसार होना चाहिये और जो ध्येय हमारा होता है उसी के अनुसार हमारा चरित्र रहना चाहिये। हमारे नैतिक जीवन का अधःपतन होने से जाति और समाज की प्रतिष्ठा कम होती है। अगर हमारे ध्येय में अनिश्चितता है हमारे नैतिक ध्येय में निश्चितता नहीं है तो किसी जाति, समाज और राष्ट्र के लिये स्वाभिमान से जिन्दगी बिताने की कोई उम्मीद नहीं है। हमारे मन, वचन, काय के विचार, उच्चार और कृति में अहिंसा भाव होना चाहिये। अगर हमारी ध्येयनिष्ठा और नैतिक स्तर में तफावत हो तो जाति, समाज और राष्ट्र के अभ्युदय के लिये हम कोई उम्मीद नहीं रख सकते। ध्येय में निष्ठा रखने वाले थोड़े ही लोग क्यों न हों वे आदरणीय हैं।

जैन मुनि त्यागी अहिंसा और अपरिग्रही वृत्ति के होते हैं। समाज के लिये वे आधार स्तम्भ हैं। जैन मंदिर, जैन मुनि और शास्त्र ये जैन धर्म और अहिंसा तत्व में निष्ठा कायम रखने के लिये समाज में अत्यावश्यक हैं। जैन लोग जिनको ईश्वर मानते हैं वे जिन भगवान वीतरागी और निस्पृही होते है। ऐसे ईश्वर हमको क्या दे सकते हैं? जैन धर्मावलंबी जो पूजन करते हैं उसका उद्देश्य सिद्ध अवस्था प्राप्त करना होता है। सिद्धावस्था ही जीवन की सर्वोत्कृष्ट अवस्था है और सिद्ध परमात्मा ही ईश्वर है। सिद्धभगवान इस सृष्टि का निर्माण नहीं करते हैं और संसार से उनको कोई संबंध नहीं है।

वे न किसी पर मेहरबान होते हैं और न किसी को सजा देते हैं, सिद्धावस्था आत्मा की शुद्धावस्था है। सिद्ध परमात्मा अनंत दर्शन, अनन्तज्ञान, अंनत वीर्य, और अनंत सुख के धारक हैं। हर आत्मा में ये शक्तियाँ हैं, हम प्रार्थना, पूजन और भक्ति जो अरिहंत भगवान के सामने करते हैं हमारी इन सुप्त शक्तियों के विकास के लिये करते हैं और अरिहंत भगवान से हमारी कोई अपेक्षा नहीं है। जैन धर्म में जो निरूपण है उसके अनुसार हर जीव की जो क्रियायें या कृतियाँ होती हैं उसके कारण कर्म का आस्रव, बंध और निर्जरादि स्वयं चलित अनादि है। हर जीव अपने विचार, उच्चार (वचन) और कृतियों का जिम्मेदार है। हर जीव की क्रियायें शुभ या अशुभ हुआ करती हैं। कर्म अनादिनिधन है यही तो जैन धर्म का वैशिष्ट्य है, स्वयं की प्रेरणा से कुछ नियमानुसार जीव चलता है ऐसे जीव अल्पसंख्यक ही रहते हैं।

जैनियों को अपने धर्म के अनुसार चलना चाहिये जिसके कारण वह आदरणीय, शुद्ध और आदर्श जीवन बिता सकता है–धर्म के अनुसार चलने से हमारी सद्-असद् विवेक बुद्धि जागृत रहती है। हम सद्गुणी बनते हैं। जिसके कारण मानसिक सन्तुष्टता और आध्यात्मिक समताभाव हमको प्राप्त होता है।

जैन धर्म ने तीन महान तत्वों का प्रतिपादन किया है–अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह वृत्ति ये ही तीन तत्व हैं। अहिंसा का अर्थ किसी जीव पर जुल्म या अन्याय नहीं करना है, अनेकांत तत्व के अनुसार सत्य अनेक विध प्रकार का है। दूसरों की क्या मतप्रणाली है इसको समझने के लिये धर्म-सहिष्णुता की जरूरत है।

अहिंसा धर्माचरण यह सामाजिक ध्येय है और अनेकांत यह तत्व बौद्धिक क्षेत्र का ध्येय है।

जैनधर्मी लोग जिस सभय के घटक हैं उनको अपने परिग्रह का, अपने स्वामित्व का, स्थावर जंगम इस्टेट का, धन-धान्यादि के उपयोग का प्रमाण करना चाहिये। अपने अनावश्यक जरूरीयात के अनुसार ही स्थावर जंगम इस्टेट पर कब्जा करना चाहिये। कुछ दश प्रकार के परिग्रह, क्षेत्र, वास्तु, धनधान्य, द्विपद, चतुष्पद, शयनासन, पान, सर्व प्रकार के वस्त्र और सब प्रकार की धातु के बर्तन हैं–इन सब परिग्रहों का अपनी शक्ति, परिस्थिति और आवश्यकताओं के अनुसार प्रमाण करना यह परिमित परिग्रह कहलाता है। इस प्रमाण से जो परिग्रह ज्यादा है उसको चर्तुविधदान में खर्च करना हर जैनी का कर्तव्य है, स्वयं ही इस व्रत को स्वीकार करने से यह समाजवाद, सामाजिक समता को कायम रखता है।

"जीओ और दूसरे जीवों को जीने दो" यह अहिंसा के पालन का तरीका है।

जब हम दूसरों के मत से सहमत नहीं रहते, ऐसी अवस्था में दुभिन्न मतवालों के विचारों को हमें सहानुभूति पूर्वक सुनना चाहिये। जैनियों की यह सर्वधर्म सहिष्णुता है।

जैन धर्म की विविध और विपुल उपाधियों को जाने समझे बिना भारतीय संस्कृति का ज्ञान परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता। जैन धर्म ने वर्ण, जाति, रूप, समाज विभाजन को कभी महत्व नहीं दिया। यह बात राष्ट्रीय दृष्टि से ध्यान देने योग्य है।

आज की ईर्ष्या और संघर्ष की आग से दग्ध संसार को जीव मात्र के कल्याण और उत्कर्ष की भावनाओं से ओतप्रोत इस उपदेशामृत की बड़ी आवश्यकता है। □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org